गुरु महिमा

गुरु बिन भव निधि तरिअ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

गुरु महिमा

प्रातः स्मरणीय परम सन्त श्री भवानी शंकर जी महाराज

उपाख्य 'चच्चा जी'

चन्द्र नगर, उरई - जालौन (उ.प्र.)

संरक्षक :
परम सन्त श्री कृष्ण दयाल
८५६ पुराना कटरा
इलाहाबाद (उ.प्र.)

प्रकाशक :
सदाचार आश्रम
नवां मार्ग राजेन्द्र नगर
लखनऊ (उ.प्र.)

सम्पादक :
डॉ. राम स्वरूप खरे
एम.ए., पी.एच.डी.
'साहित्यरत्न'

प्रतियां :
५००

संस्करण :
२००३

सहयोग राशि :
तीस रुपय मात्र

मुद्रक :
आर. एस. प्रिंटिंग प्रेस, उरई

अनुक्रमणिका

आशीर्वाद	०५
सम्पादकीय	०७
गुरु वन्दना	१२
गुरु स्तुति	१४
चच्चा चरितम्	१६
श्री गुरु चरण रज महात्म्य	१९
सदगुरु महिमा	२०
निश्छलता	२१
विनयशीलता	२२
समर्पण	२३
शुभाचरण	२४
आज्ञा पालन	२७
अज्ञानता	२९
सीख	३०
गुरु कृपा प्राप्त शिष्य का वैभव	३१
परम पूज्य चच्चा जी महाराज के प्रिय भजन, पद, दोहे एवं चौपाइयां	३२
संत कबीरदास	३३
संत पलटूदास	३७
यारी साहब (भजन संग्रह)	४०
सुन्दरदास की बानी	४१
सहजो बाई	४२
दयाबाई की बानी	४४
प्रसंत मीराबाई	४५
गुरुभक्त श्री सम्पूर्णानन्द	४६
राम-बाल्मीकि : प्रसंग	४९
गुरु भक्त काशीप्रसाद जी के पद	५१
गुरु भक्त राम स्वरूप के दोहे	५४
आरती	५५

परम तेजस्वी श्रीकृष्ण दयाल जी महाराज

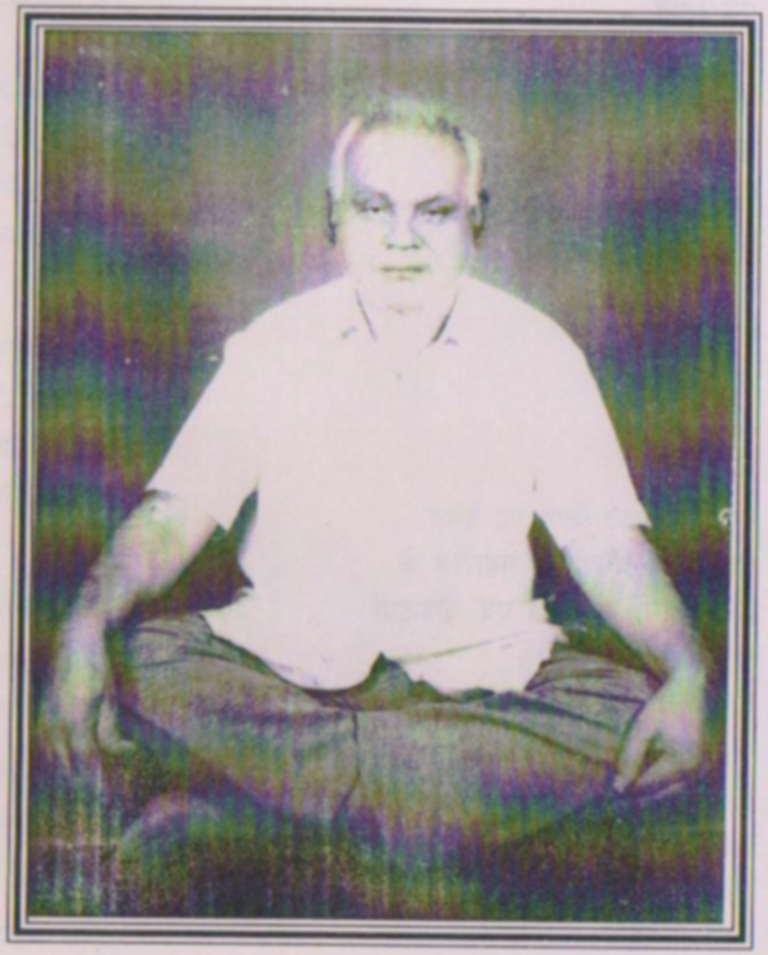

संरक्षक
सदाचार आश्रम, लखनऊ

आशीर्वाद

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि परमपूज्य प्रातः स्मरणीय सन्त श्री भवानीशंकर जी महाराज के अनन्य एवं परम प्रिय शिष्य श्री काशीप्रसाद श्रीवास्तव लखनऊ की प्रेरणा से डॉ. राम स्वरूप खरे **"गुरु महिमा"** का सम्पादन करके उसे प्रकाशित कराने जा रहे हैं।

दोनों के सद्प्रयास की मैं हृदय से प्रशंसा करता हुआ यह आशीर्वाद देता हूँ कि सतसंगी बन्धु इस पुनीत संकलन से बहुत कुछ ग्रहण करके अपना-अपना जीवन सदाचारमय बना सकेंगे।

गुरु तत्व एक गूढ़ विषय है। इस तत्व को भली भाँति समझने के लिये समर्पित होकर गुरु की शरण में जाना पड़ता है। सद्गुरु निराकार ब्रह्म का साकार रूप है वह चेतना का मर्मज्ञ माना गया है। इस तक पहुँचने के लिये अगाध श्रद्धा और अखण्ड विश्वास की परम आवश्यकता है। पूर्ण निष्ठा के साथ श्रद्धा होने पर समर्पण स्वतः होने लगता है। श्रद्धा की परिपक्वता, समर्पण की पूर्णता शिष्य में अनन्त सम्भावना के द्वार खोल देती है। उसके समक्ष गुरु की चेतना की रहस्यमयी परतें खुलने लगती हैं। गुरु का यह रूप जान लेने पर मौन व्याख्या शुरु हो जाती है। गुरु भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान तो प्रदान करते ही हैं जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान भी उन्हीं के श्री चरणों के प्रताप से ही मिलता है।

गुरु की महिमा के सम्बन्ध में अनेक ज्ञानियों एवं सन्तों ने वर्णन किया है। गुरु महिमा तो अपार है, अनन्त एवं अथाह है। इसका वर्णन शब्दों की परिधि के बाहर है। पूर्णरूप से यह अनुभव का विषय है।

इस पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस से गुरु से सम्बन्धित चौपाइयों एवं दोहों को छाँटकर विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है तथा पुस्तक के अन्त में अन्य सन्तों के गुरु-कृपा से सम्बन्धित भजन भी अंकित किये गये हैं।

इस पुस्तक के नियमित पाठ से साधकों को गुरु-तत्व को आत्मसात् करने

में ईश्वरीय सहायता प्राप्त होगी एवं उनके श्री चरणों में प्रेम बढ़ेगा, जिससे लोगों का मार्ग सदाचार की ओर आकर्षित होगा तथा धीरे-धीरे उनका मन निर्मल होने लगेगा। अतः इस पुस्तक को पूजा का अंग बना लेना लाभप्रद होगा।

जीवन का मुख्य लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। इसलिये मनुष्य को प्रतिदिन साधना एवं अभ्यास निश्चित समय पर करना चाहिये एवं समय-समय पर अपना आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिये तदनुसार अपनी कमियों को दूर करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिये।

गुरुदेव की कृपा से सबका भला हो।

ऊँ शान्ति ! ऊँ शान्ति !! ऊँ शान्ति !!!
ऊँ शान्ति ! ऊँ शान्ति !! ऊँ शान्ति !!!
ऊँ शान्ति ! ऊँ शान्ति !! ऊँ शान्ति !!!

कृष्णदयाल
संरक्षक

प्रकाश पर्व, लखनऊ
२६-१०-२००३

यस्य देवे परा भक्ति यर्था देवे तथा गुरौ।
तस्मैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

- श्वेताश्वेत उपनिषद्, छटवाँ अध्याय, श्लोक २३

(अर्थात् जिस साधक की परमेश्वर में परमभक्ति होती है तथा जिस प्रकार ईश्वर में होती है उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है, उस महात्मा मनस्वी पुरुष के हृदय में ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।)

❖ **घर की प्रत्येक वस्तु को साफ व सुथरी तथा ठीक-ठीक स्थान पर रखना चाहिए। - सन्त श्री भवानीशंकर**

सम्पादकीय

परब्रह्म परमात्मा का साक्षात दर्शन आज तक कोई अपने बल पर नहीं कर सका है। क्योंकि वह समस्त इन्द्रियों से परे अगोचर है। वह अजन्मा है। न उसका कोई आदि है और न उसका कोई अन्त। इसीलिये वेद उसका 'नेति-नेति' कहकर ही वन्दन करते हैं। वह माया पति होते हुये भी उससे मुक्त है। यह समूची सृष्टि उसी से उत्पन्न होती है, वही इसका पालक और नियन्ता है तथा बाद में उसी परब्रह्म में ही यह सम्पूर्ण चराचर सृष्टि लीन हो जाती है। वह बिना पैरों के चल सकता है, बिना कानों के सब कुछ सुन सकता है, बिना हाथों के सब कुछ कर सकता है, वह असम्भव को सम्भव बना सकता है। वह राजा को रंक और रंक को चक्रवर्ती सम्राट के सिंहासन पर पदारूढ़ करा सकता है। तात्पर्य यह है कि वह सर्वसमर्थ और सर्वशक्तिमान है। पर, यह भी सच है कि वह परात्पर परब्रह्म परमात्मा अपने भक्तों एवं साधकों के अधीन होकर उनकी इच्छा पूर्ति के लिए ही अनेक रूप (अवतार) धारण करता है।

ईश्वर-दर्शन के लिये किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। प्रायः सभी मत मतान्तर, पंथ-सम्प्रदाय, मजहब और धर्म इस बात को स्वीकार करते हैं कि मूल रूप से ईश्वर एक है। उसे प्राप्त करने के अनेक मार्ग (साधन) हैं। इन मार्गों पर मनमाने ढंग से नहीं चला जा सकता है। जिन महापुरुषों ने कठिन साधना और तपस्या करके उस ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त कर लिया है, वे ही सच्चे मार्ग पर किसी दूसरे को उन्मुख करते हुये उसकी विघ्न-वाधाओं को दूर कर सकते हैं। पर, जिन्होंने ऐसा नहीं किया वे कदापि इस मार्ग पर दूसरों को नहीं ले जा सकते। इसीलिये हम सब साधकों अथवा अभ्यासियों को श्रेष्ठ माध्यम (गुरु) की आवश्यकता प्रतीत होती है। जैसा सन्त कबीर साहब अपनी एक साखी में फरमाते हैं-

"तीरथ गये ते एक फल, सन्त मिलें फल चार।
सद्गुरु मिले अनेक फल, कहत कबीर विचार।।"

सद्गुरु भगवान सर्वसमर्थ और ईश्वर की भाँति ही अत्यन्त उदार और सबका कल्याण चाहते हैं। सद्गुरु का अन्तः जीवन और बाह्य जीवन एक-सा

❖ **अपने प्रति दूसरों से भूल-चूक हो जाने पर उन्हें प्रेम दृष्टि से क्षमा कर दें।**

होता है। उसकी कथनी और करनी अत्यन्त सरल और अनुकरणीय होती है। वह मानव-जीवन का श्रेष्ठ स्वरूप होता है और वही एक मात्र साकार से निराकार तथा निराकार से साकार का दर्शन भी करा सकता है। वह ईश्वर का सबसे बड़ा कृपा-पात्र होता है। इसीलिए वह भी परोपकार करते हुये सबकी कल्याण कामना करता रहता है। उसे दीन-दु:खियों से सच्चा प्यार होता है। वही भव-सागर से नाम रूपी नौका पर बिठला कर पार भी कर सकता है।

सच्चे गुरु के प्रति शत प्रतिशत समर्पण आवश्यक होता है। निन्यानवे प्रतिशत नौ प्वाइंट नहीं चल सकता। वास्तव में सद्गुरु से कोई पर्दा नहीं होता लेकिन वह स्वयं अपने साधकों के सारे पर्दे (मन के आवरण) हटा देता है और मन के निर्विकार होने पर एक सच्चे कृषक की भाँति उसके हृदय में ज्ञान के बीज बो देता है। जब किसी साधक के मन में यह बीज अंकुरित होता है तब फिर उसमें प्रेम का जल डालकर भक्ति की खाद भी डालता है तत्पश्चात् बड़े 'जतन' से उसकी रक्षा भी करता है। परिणाम स्वरूप उसके खेत में अद्वैतभाव की स्वर्णिम फसल लहलहा उठती है जिसमें कैवल्य और मोक्ष के अत्यन्त मधुर फल प्राप्त होते हैं। इसीलिए साधक अथवा अभ्यासी सफलता के सर्वोच्च शिखरों का चुम्बन कर ईश्वर अथवा अपने गुरु के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

आज के घोर कलियुग में यद्यपि 'सदगुरु' की खोज अत्यन्त कठिन है पर, सच्चे साधक 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' के आधार पर उसे प्राप्त कर ही लेते हैं। पूरी निष्ठा से सच्चा प्रयास और प्रयत्न इसके लिये परमावश्यक है। सदगुरु ही ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधि है। इसीलिए एकमात्र वह ही ब्रह्म का साक्षात्कार करा सकता है। ऐसे ही समर्थ सदगुरु 'अप्प दीपो भव' की सच्ची प्रेरणा दे सकते हैं। वास्तव में सदगुरु अपने शिष्य के पूर्व के संस्कारों को अपनी तेजस्विता के कारण क्षण मात्र में ही नष्ट कर डालता है और आगे के संस्कार (वासनायें) उत्पन्न नहीं होने देता। इस प्रकार सदगुरु अपने शिष्य का उद्धार कर्ता बनकर उसे स्वयं अपने में लीन कर लेता है। यही द्वैत से अद्वैत और तदाकार की स्थिति कहलाती है।

❖ सन्तों की वाणी तथा उनका आदर्श जीवन-चरित अभ्यास-साधन में लाभकारी है।

सन् १९४८ ई. में जब परम पूज्य चच्चा सन्त श्री भवानी शंकर जी महाराज आध्यात्मिक भ्रमण करते हुये महरौनी के सत्संग भवन पर पहुँचे तभी उन्होंने मुझे अपनी शरण में लेकर अपना शिष्य बना लिया। उस समय मैं मिडिल क्लास में पढ़ता था। प्रत्येक गुरुपूर्णिमा और दशहरा पर आध्यात्मिक कार्यक्रमों में निरन्तर उपस्थित रहकर ज्ञान-पिपासा बुझाता रहा। बीस-इक्कीस वर्ष पश्चात् मुझे भान हुआ कि वास्तव में चच्चा जी महाराज असाधारण एवं अलौकिक व्यक्तित्व के ही धनी नहीं वरन् वे आध्यात्म शिक्षा के शिखर पर पहुँचे हुये साकार परमात्मा ही हैं। मेरा सारा गृहस्थ जीवन और पूरा परिवार उनके पारस-स्पर्श को पाकर कृतकृत्य हो उठा। मेरे सम्पूर्ण परिवार पर उनकी सदैव अहैतुकी कृपा बनी रही है।

परमपूज्य गुरुदेव चच्चा जी महाराज की जन्मस्थली जालौन, कर्मस्थली झाँसी एवं उरई रही है। ग्रीष्मावकाश में वे इलाहाबाद में रहते थे। सत्संग के कार्यों एवं इलाज के सिलसिले में लखनऊ जाया करते थे जहाँ पर वे अपने अनन्य भक्त श्री काशी प्रसाद जी के निवास स्थान पर ठहरते थे, जो अन्तत: 'सदाचार-आश्रम' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। यहाँ पर गुरुदेव अपने सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं।

मैं तो माया-मोह में आवद्ध एक साधारण एवं तुच्छ-सा प्राणी हूँ भला मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि मैं उनकी महिमा का वर्णन कर सकूँ। पर, सभी ने जिसकी मति में जैसा समझने में आया तदनुरूप उसका वर्णन किया है। यदि परमपूज्य प्रात स्मरणीय आदरणीय पापा जी श्री कृष्णदयाल जी महाराज की अहैतुकी कृपा मुझपर न होती तो यह संकलन इस रूप में उपलब्ध न हो पाता।

भाईसाहब कृष्णदयाल जी की विदुषी पुत्री श्रीमती प्रभा, आदरणीय भाईसाहब काशीप्रसाद (लखनऊ), श्री रमाशंकर विद्यार्थी सेवानिवृत्त डिप्टी कलेक्टर उरई, श्री देव सिंह परिहार रामायणी पुखरायाँ, भाई सत्यप्रकाश श्रीवास्तव प्रवक्ता बी. एड. डी.वी. कालेज उरई, भाई ओमप्रकाश श्रीवास्तव, अपर जिलाधिकारी इलाहाबाद तथा श्री गिरीश श्रीवास्तव एडवोकेट उरई, श्री अश्विनी कुमार

❖ संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, किन्तु ईश्वर भक्ति के बिना सुख की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।

श्रीवास्तव, कानपुर, श्री चन्द्रकृष्ण खरे, उरई, श्री राधाकृष्ण खरे लखनऊ इत्यादि का यदि सम्यक मार्गदर्शन और समुचित परामर्श न मिलता तो यह कृति प्रकाशित ही न हो पाती। पर, ये सब तो अपने ही हैं। इन्हें कैसे धन्यवाद ज्ञापित करूँ !

इसमें जो भी त्रुटियाँ रह गई हों, वे सब मेरी हैं और यदि इन पंक्तियों से किसी को ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा मिले तो यह सब गुरुजनों की कृपा का फल है।

विनत हो यह कृति सबके कर-कमलों में सादर सश्रद्ध समर्पित है।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं।
ते जन सकल विभव बश करहीं।।

- सम्पादक

"जो किसी अवसर पर गुरु का जूठा अन्न मिल जाने पर उसके सामने आत्म-समाधि का भी कोई महत्व नहीं समझता, हे अर्जुन! गुरुदेव के चलने के समय उनके पैरों से धूल के कण पीछे की ओर मुड़ते रहते हैं उनमें का एक कण भी जो मोक्ष-सुख के बदले में ग्रहण करने के लिये उत्सुक रहता है, वही वास्तव में गुरु का सच्चा सेवक और शिष्य होता है। ऐसे भक्त के पास ज्ञान अपने सब द्वार मुक्त करके रहता है।"

- सन्त ज्ञानेश्वर, हिन्दी ज्ञानेश्वरी, पृष्ठ ३८२

❖ घर में शुद्ध वायुमण्डल रखने के लिये छोटे-बड़े, नौकर-चाकर सबके प्रति सेवा भाव से यथायोग्य प्रेम व नम्रता के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिए।

प. पू. चच्चा जी महाराज के गुरुदेव भगवान

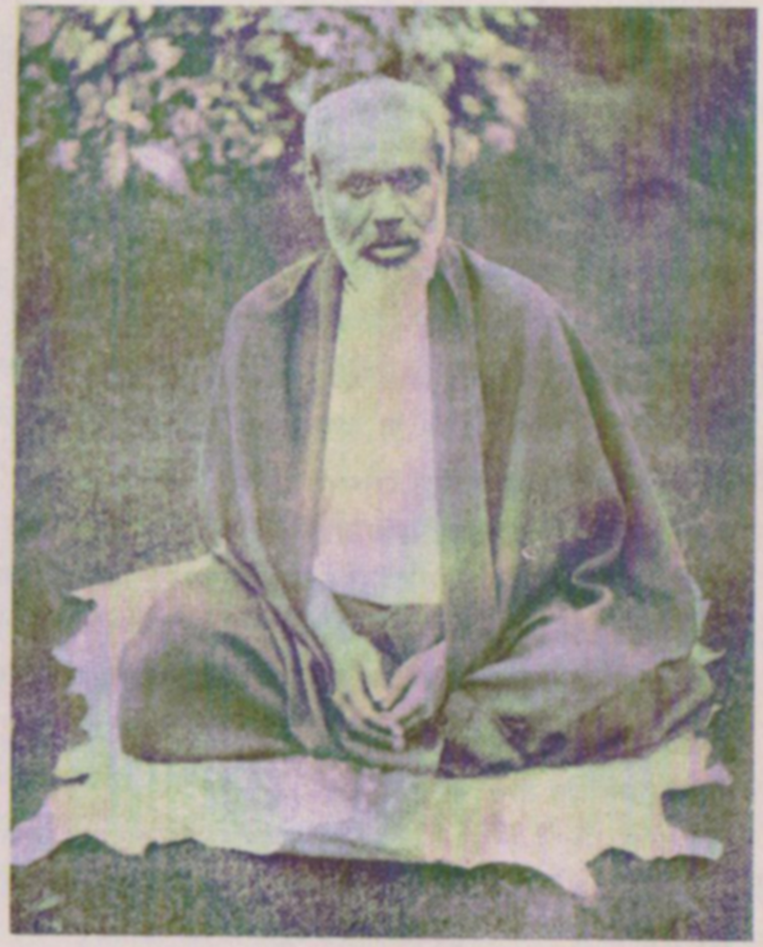

प्रातः स्मरणीय सन्त शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी महाराज
फतेहगढ़ (उ.प्र.)
उपाख्य 'लाला जी' महाराज

गुरु - स्तुति

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशः चारुचित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्नलग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।१।।

(यदि किसी को रूपवान शरीर, रूपवती माया, अद्भुत यश तथा सुमेरू के समान अनन्त धनराशि भी प्राप्त हो परन्तु यदि उसका मन श्री गुरुचरण कमल में अनुरक्त न हुआ तो इन सबकी प्राप्ति से क्या हुआ ?)

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्विजातम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मो ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।२।।

(चाहे किसी को स्त्री, धन, पुत्र, पौत्र, घरबार, बांधव आदि सब प्राप्त हो जाय किन्तु यदि उसका मन गुरु के चरण कमल में नहीं लगता तो इन सबसे क्या हुआ?)

षड्गादि वेदों मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।३।।

(भले ही किसी को छः अंगों सहित वेद समस्तशास्त्र तथा विद्यायें प्राप्त हो साथ ही गद्य तथा पद्य में काव्य रचना कर सकने की सामर्थ्य रखता हो परन्तु यदि उसका मन गुरु के चरणकमल में लीन नहीं हुआ तो इन सबसे क्या लाभ ?)

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचार वृत्तेषु मत्तो न चान्यः।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।४।।

(जिसकी (चाहे) विदेशों में मान्यता हो, स्वदेश में भी धन्य हो रहा हो तथा यह मान्यता हो कि सदाचार के आचरण में मुझ से बढ़कर दूसरा नहीं है, उस ऐसे का भी मन यदि गुरु के चरणकमल में नहीं लगा तो उससे क्या हुआ ? अर्थात् यह सब गुरु भक्ति के बिना निष्फल है)

❖ नित्य प्रति शरीर को स्वच्छ और पवित्र रक्खो क्योंकि इसमें ईश्वर का वास है।

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।५।।

(चाहे पृथ्वी मण्डल पर किसी (प्रतापी) के चरणारविन्द राजामहाराजाओं के समूह द्वारा निरन्तर सेवित हों फिर भी यदि उसका मन गुरु के चरणकमल में नहीं लगता है तो इससे क्या हुआ ?)

यशोमेमतं दिक्षुदान प्रतापात् जगवस्तु सर्वकरे मत्प्रसादात्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।६।।

(जो यह मानता है कि उदारता तथा महानता से मेरा यश समस्त दिशाओं में फैला हुआ है और ईश कृपा से संसार की समस्त विभूतियाँ मेरी मुट्ठी में हैं उसका भी मन यदि गुरु के चरणकमल में लीन नहीं हुआ तो इस सबसे क्या लाभ ?)

न भोगे न योगे नवा वाजिराऔ न कान्ता मुखं नैव वित्तेषु चित्तम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।७।।

(जिसका मन न भोग में न योग में लगता हो न अश्वो की पंक्ति में और न प्रियतमा के स्वरूप में न धन में रमता हो फिर भी यदि उसका मन गुरु के चरणकमल में जब लीन नहीं हुआ तो इन सब उपलब्धियों से क्या लाभ हुआ?)

अरण्ये न वा स्वस्यगेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मेत्वनर्घ्यो।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।८।।

(यदि किसी का मन न वन में और न घर में न सांसारिक कष्टों में न देह में और न संसार के बहुमूल्य पदार्थों में लगा हो ऐसे विरक्तमन वाले का भी यदि गुरु के चरणकमल में अनुरक्त नहीं है तो क्या लाभ है ? अर्थात् गुरुचरणारविंदों में प्रीति ही मनुष्य की सच्ची उपलब्धि है।)

- 'गुरु अष्टक' जगदगुरु श्री शंकराचार्य

❖ दीन-दुखी, अभाव ग्रस्त और निर्धनों की सदैव सहायता करना परम धर्म है।

बन्दहु गुरु पद बारहिं बारा। जासु कृपा छूटहिं दुख सारा।।

चच्चा चरितम्

ध्यानम्

प्रकृत्या ब्रह्मलीनो दयाकरुणापूरितनयन-
प्रेमाप्लावितहृदयौ, सदा परहित रत वरकरौ
सदासेवासन्नद्धौ, मृदुलावपिपादाम्बुजौ
एवं गुरुदेवः हृदये मम निवसतु सदा।

अर्थ -

जिनके नेत्र दया और करुणा से परिपूर्ण हैं और हृदय प्रेम से लबालब भरा हुआ है, दोनों श्रेष्ठ हाथ सदैव दूसरों की सेवा में रत हैं। कोमल होते हुए भी चरण-कमल सदैव सेवा के लिये तत्पर हैं ऐसे ब्रह्मलीन परम पूज्य गुरुदेव श्री चच्चा जी महाराज सदैव मेरे हृदय में निवास करें।

ॐ श्री गुरवे नमः

दोहा

सब दोषन के नास कौ, है अति सरल उपाय।
गुरु चरनन में मन रहै, सब ही होउ सहाय।।

चौपाई

बन्दऊ चच्चा पद जल जाता। जेहि सुमिरत अघ सब मिट जाता।।
जासु चरित समुझा नहिं कोई। तेहि वरनन कहु केहि विधि होई।।

एकहि बात रहै मति मेरी। निज परिजन पर प्रीति घनेरी।।
अतःप्रकृति बस क्षमा वे करिहैं। जदपि दास पर अवसि वे हसिहैं।।
चरित रहा जिनका अति नीका। रामदयाल गृह जनम ग्रहीता।।

मातु पितहिं परलोक सिधारे। अल्पकाल सब कष्टन धारे।।
बाल काल मन दृढ़ जिज्ञासा। मिलिहै प्रभु ये अटल विश्वासा।।
एहि विश्वास भये प्रभु लीना। सब दुख कष्ट नष्ट कर लीन्हा।।

सदाचार मय जीवन कीन्हा। प्रेम सच्चाई ब्रत धर लीन्हा।।
एहि भाँति कछु समय बिताए। फिर प्रभु झाँसि नगर में आये।।
निज दम्पति संग भ्रातृज लाए। संग अपने रख उसे पढ़ाए।।
प्रभु कँह भ्रातृज था अति प्यारा। जो असमय परलोक सिधारा।।
भ्रातृज दुख मन हृदय विदारा। प्रेम मूर्ति कँह सूल अपारा।।
पत्नी संग विचार यह कीन्हा। लेहुँ बिराग यह निर्णय कीन्हा।।

मर्माहत दम्पति गृह त्यागा। सदगुरु संत मिलैं मन लागा।।
चलत चलत चित्रकूटहिं आए। संत श्री राम नरायन पाए।।
चच्चा दम्पति देख चकित भए। राम नरायन पुलकित भए।।

अतिथि दम्पति कँह आसन दीन्हा। बारम्बार नमन है कीन्हा।।
बोलेउ आज सिया रघुराई। आए हैं मोरे गृह भाई।।
चच्चा कहेउ उपदेसहु ताता। संत कहेउ स्वयं प्रभु भ्राता।।

मैं तुम्ह कहा उपदेसहु स्वामी। आज धन्य मोहि कीन्ह भवानी।।
वृथा परिश्रम दिवस गँवाए। नहिं कोऊ सदगुरु सम मन भाए।।
मौनी संत ऋषिकेश निवासा। भ्रमत भ्रमत प्रभु पहुँचेउ पासा।।

कहेउ संत कलिकाल है भाई। दुर्लभ गुरु पारस की नाईं।।
विषयी व्यक्ति वेश धर लीन्हा। जे सर्वत्र प्रदूषण कीन्हा।।
वापस होउ गृहस्थ में भाई। जहँ समरथ सदगुरु तुम पाई।।

बचन सुने गृहस्थाश्रम आए। उचित समय लाला जी पाए।।
प्रथमहि भेटिं भए अधिकारी। ब्रह्मलीन जदपि तन धारी।।
शिष्य बनन गवनेउ थे ताता। सदगुरु बन लौटे गृह नाथा।।

लखि गुरुतर दायित्व गुरु के। लाला सन कह बचन हृदय के।।
नाथ मोहि निज चरनन रखिए। यह दायित्व औरन कँह दीजै।।
है अति कठिन काज ये स्वामी। सब तुम जानहु अन्तर्जामी।।

तब लाला प्रबोध अस कीन्हा। सकल रहस्य सुबोध कर दीन्हा।।
मत समझहु तुम करिहउ भाई। सोचई सोच वृथा अकुलाई।।
जे तुम्ह तनिकउ प्रीति करिहैं। तिनकी रखवारी हम करिहैं।।

तब तैं पर दुख हरन मगन भए। सुमिरत सेवक कष्ट नष्ट भए।।
कैसहुँ, प्रभु कँह जानन हारे। कृपा अहैतुक पावन हारे।।
निज जन अजहुँ उन्हें अति प्यारे। बिगरी अबहुँ बनावन हारे।।
निज कँह भव से बाँधन हारे। सुमिरत ही प्रभु साथ हमारे।।

सबके कलिमल धोवन हारे। सेवा रत पर लोक सिधारे।।

दोहा

कैसहु सेवक कष्ट परै, सुमिरन उनका कीन्ह।
सकल दुखन के प्रभंजन, नासै जल बिन मीन।।
सबकी सेवा होत रहै, निदेसेहु जय दयाल।
सुसमय स्वामी कृष्णजी, सम्प्रति कृष्ण दयाल।।
चच्चा चालीसा पढ़ै, नासै दुख की रैन।।
लखि निज पितु की सद्गति, भर आवत हैं नैन।।

स्थावरं जंगमं व्याप्तं यत्किंचित्सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।
(अर्थात् आकाश रहित जड़ और चेतन जो कुछ पदार्थ हैं, उनमें जो परमात्मा व्याप्त है, उनके चरणकमलों का दर्शन जिनके द्वारा मिला है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।)

– श्री गुरु गीता, श्लोक १५०

❖ जैसे-जैसे मनुष्य के पास धन बढ़ता है, वैसे-वैसे उसके सद्गुण नष्ट होते जाते हैं।

श्री गुरु चरण रज-महात्म्य

दोहा : श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन-मुकुर सुधार।
बरनहु रघुवर विमल जस, जो दायक फल चार।।

वन्दहु गुरु पद पदम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।।
सुकृति संभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएं तिलक गुन गन बस करनी।।
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो स प्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उधरहिं विमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

दोहा : यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल वन, भूतल भूरि निधान।।

गुरु पदरज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष विभंजन।।
जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जन सकल विभव बस करहीं।।
जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहु बड़भागी।।
एहि विधि सब संसय कर दूरी। सिर धरि गुरु पद पंकज धूरी।।

दोहा : राम नाम कलि काल तरु, राम भगति सुर धेनु।
सकल सुमंगल मूल जग, गुरु पद पंकज रेनु।।

– दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास दोहा, २७

❖ यथार्थ कर्तव्य-फलन वह है जिससे न अपना मन दुखी व दूषित हो और न दूसरे का।

सद्गुरु महिमा

करन धार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
गुरु बिन भव निधि तरिअ न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई।।
राखइ गुरु जो कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।
मातु पिता गुरु प्रभु की बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।।
गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनबउं दीनबन्धु दिन दानी।।
सदगुरु ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के।।
गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।।
मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउं कहाँ तजि पद जल जाता।।

दोहा : सन्त कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिवेक उर, गुरु सन किये दुराव।।
राइवइ गुरु जो कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

गुरु बिवेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना।।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला।।
हंस बंस गुरु जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा।।
प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी।।

दोहा : राज काज सब लाज पति, धरनि धरम धन धाम।
गुरु प्रभाव फलिहि सबहि, भल होइहि परिनाम।।

गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि मान।।

भूमिजीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाइ।।

कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
जननि जनक गुरु बन्धु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे।।

सो. बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहइ हरि भगति बिनु।।

एक सूल मोहि बिसरि न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।।
सदगुरु बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय की आसा।।
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिवेक बड़ाई।।
गुरु पद प्रीति नीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।।

निश्छलता

हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।।
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी।।
राम सुभायं चले गुरु पाँही। सिय सनेह बरनत मन माहीं।।
जो लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।।
उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाहीं।।
अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।।

दोहा : सो दयाल नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुरु अपमानता, सह नहिं सके महेस।।

जद्यपि तब गुरु के नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।

दोहा : हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोक अति, उर उपजा परिताप।।

दोहा : गुरु के बचन सुरति करि, रामचरन मन लाग।
रघुपति जस गावत फिरउं, छन छन नव अनुराग।।
सुनि सिव बचन हरषि गुरु, एवमस्तु इति भाखि।
मोहि प्रबोध गयउ गृह, संभु चरन उर राखि।।

विनयशीलता

लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन सन्देहू।।
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति।।

दोहा : गुरु समाज भाइन्ह सहित, राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ भाग सब कोउ।।

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा।।
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री।।

दोहा : करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुन, कुसमयँ किमि कहि जात।।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी।।
तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर बन की।।
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिं तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू।।
देसु कोसु परिजन परिबारू। गुरु पद रजहिं लाग छरू भारू।।
गुरु पितु मातु स्वामि सिखपालें। चलेहु कुमग पग परहिं न खालें।।
भरत सील गुरु सचिन समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू।।
मुनिगन गुरु धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से।।
जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी।।

दोहा : गुरु गुरु तिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आये परन निकेत।।

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम बिरह सब साजु समाजू।।
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू। तेरहुत चले साजि सब साजू।।
नगर नारि नर गुरु सिखमानी। बसे सुखेन राम रजधानी।।

सानुज गे गुरु गेहँ बहोरी। करि दण्डवत कहत कर जोरी।।
राम मातु गुरु पद सिर नाईं। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।।
बहुत दिवस गुरु दरसन पाए। भए, मोह एहि आश्रम आए।।
अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं।।
तुरत सुतीछन गुरु पहि गयऊ। करि दण्डवत कहत अस भयऊ।।
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा।
धाय धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।
गुरु बसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे।।
गुरु बसिष्ट द्विज लिए बुलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई।।
एक बार रघुनाथ बुलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।

समर्पण

गुरु गृह गयेउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विसाला।।
निज दुख सुख सब गुरहिं सुनावा। कहि वसिष्ठ बहु बिधि समुझावा।।
गुरु वसिष्ठ कहँ गयेउ हँकारा। आये द्विजन्ह सहित नृप द्वारा।।
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि विलम्बु भास मन माहीं।।

दोहा : लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार।।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी। वेद तत्व नृप तन सुत चारी।।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु आई। विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।।
भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।।
प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्प काल विद्या सब आई।।

परम विनीत सकुचि मुसकाई। बोले गुरु अनुसासन पाई।।
तेइ दोउ बंधु प्रेम तनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।।

दोहा : संग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ग्याति।
चले मिलन मुनि नायकहिं, मुदित राउ एहि भाँति।।

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुचि सहित दोउ भाइ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर, बैठे आयुस पाइ।।

शुभाचरण

दोहा : उठे लखन निसि विगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहि जगत पति, जागे रामु सुजान।।

नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आये। चरन सरोज सुभग सिर नाये।।

दोहा : सतानन्द पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहि जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ।।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं।।
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाय धनु लीन्हा।।

दोहा : सुनि लछिमन विहंसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम।।

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई। पुण्य पुरुष कहँ महि सुख छाई।।
तुम्ह गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी।।
मुदित असीस देहि गुरु नारी। अति आनन्द मगन महतारी।।

दोहा : तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु।।

सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं।।
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू। दुहुं कुल गुरु सब कीन्ह अचारू।।

❖ निःस्वार्थ सेवा करने से आन्तरिक शक्ति की वृद्धि होती है।

छन्द : आचारु करि गुरु गौरि, गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगट पूजा लेहिं देहिं, असीस अति सुख पानहीं।।

सास ससुर गुरु सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरहेहू।।

दोहा : देहि असीस जुहारि सब, गावहि गुनगन गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवनु कीन्ह नर नाथ।।

पूजे गुरु पद कमल बहोरी। कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी।।

दोहा : वधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि वन्दत गुरु चरन, देत असीस मुनीसु।।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता।।

दोहा : सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पाँच गइ राति।।

राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनीत बर वैन।
सुमिरि संभु गुरु विप्र पद, किए नींद बस नैन।।

बंदि विप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता।।
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुरु अनुरागे।।
बामदेव रघुकुल गुरु ग्यानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी।।

दोहा : यह विचार उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाई।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहिं सुनायउ जाइ।।

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहसि मृदु बानी।।
पूजहि गनपति गुरु कुल देवा। सब विधि करहु भूमिसुर सेवा।।
गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा।।
गुरु सिख देइ राय यह गयऊ। राम हृदय अस विसमउ भयऊ।।
उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुरु। अवध विलोकि सूल होइहि उरु।।
गुरु गृह बसहु राम तजि गेहू। नृप सन अस बरू दूसर लेहू।।

❖ ज्ञान ही सुख के भण्डार की कुंजी है।

दोहा : गुरु श्रुति सम्मत धरम फलु, पाइहि विनहि कलेसु।
हठ बस सब संकट सहे, गालब नहुष नरेसु।।

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
जो पछताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि।।

गुरु सन कहि वरसासन दीन्हे। आदर दान विनय बस कीन्हे।।
एहि विधि राम सबहिं समुझावा। गुरु पद पदुम हरष सिर नावा।।

दोहा : स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम तात।
मन मन्दिर तिनके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।।

सो० गुरु सन कहब संदेसु, बार-बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहि अवध पति।।

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाय सबहिं सुखदाता।।
साथ बुलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन्ह सहित गवनु गुरु कीन्हा।।
जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही।।
पूरन राम सुप्रेम पियूषा। गुरु अवमान दोष नहिं दूषा।।
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी।।
सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू।।
मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरु सन कहेउ कि धारिऊ पाऊ।।

दोहा : मंत्री महिसुर मातु गुरु, गने लोग लिय साथ।
पावन आश्रम गवनु किअ, भरत लखन रघुनाथ।।

विकल सनेहँ सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुरु ग्यानी।।
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते।।
सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला। भयेउ मनहुं मारुत अनुकूला।।

दोहा : बूझिअ मोह उपाउ अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेह मय बचन गुरु, उर उमगा अनुराग।।

❖ सत्य बोलने का अभ्यास सिद्ध होने पर वाक्य सिद्धि हो जाती है।

गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनन्दु बिसेषी।।
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मुद मंगल मूला।।
सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई।।
गुरु गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।।

दोहा : साधु सभाँ गुरु प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ।।

दोसु देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।।

दोहा : सादर सब कहँ राम गुरु, पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फरहार।।

जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई।।
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई।।
राम बचन गुरु नृपहिं सुनाए। सील सनेह सुभाय सुहाए।।
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे।।

दोहा : हरषित गुरु परिजन अनुज, भूसुर बृन्द समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सन्मुख कृपा निकेत।।

आज्ञा पालन

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।।
बिगत दिवस गुरु आयुस पाई। संध्या करन चले दोउ भाई।।
सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा।।
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मांगा।।
कोउ न बुझाइ कहहि गुरु पाहीं। ए बालक असि हठ भल नाहीं।।

दोहा : तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस व्यवहारु।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेद विदित आचारु।।

❖ स्वार्थवश स्वधर्म तथा लज्जा का त्याग न करना चाहिए।

तब उठि भूप वसिष्ठ कहुं, दीन्ह पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहिं सब, सादर दूत बुलाई।।

दोहा : चलहु बेगि सुनि गुरु बचन, भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास देवाइ।।

सुमिरि राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई।।
गुरुहिं पूछि करि कुल विधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा।।
समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुर प्रवेसु रघुकुल मनि कीन्हा।।

दोहा: मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहि सुभाय।
लहेहि लाभ तिन्ह जनम कर, न तरु जनम जग जाय।।

सज वन साजु समाजु सचु, बनिता बन्धु समेत।
वंदि विप्र गुरु चरन प्रभु, चलि करि सबहिं अचेत।।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। पुर बुलाय पठयेउ दोउ भाई।।

दोहा: एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आई।
गुरु अनुसासन श्रवण सुनि, चले गनेसु मनाई।।
तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सब काजु।।
कीजिअ गुरु आयसु अवसि, कहहि सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस, तस तब करब बहोरि।।

कौसल्या धरि धीरज कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई।।
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुख हरहू।।
गुरु के वचन सचिव अभिनन्दन। सुने भरत हिय हित जनु चन्दन।।
मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सब ही का।।

दोहा : एहि विधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लवाइ।।

❖ सन्तों की कृपा कोई खिलौना या अल्प पुण्य का फल नहीं है।

गुरु सन कहेउ करिउ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई।।
सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुरु सचिव नियोगा।।

दोहा : गुरु पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ।।

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी।।
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा।।
सहित समाज तुम्हार हमारा। घर वन गुरु प्रसाद रखवारा।।
सकल धरम धरनीधर सेसू। मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू।।

दोहा : देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहं काह रजाइ।।

नित्य निवाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुरु आयसु पाई।।
पुनि निज जटा राम बिबराए। गुरु अनुसासन मागि नहाए।।

अज्ञानता

दोहा : मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउ अचेत।।

नृप हरषेउ पहचान गुरु, भ्रमबस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर, विप्र कुटुम्ब समेत।।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई।।
सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा।।
मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह विकल भए भारी।।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मो समान को जोधा।
बोला बिहंस महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ग्यानी।।

सो० फूलइ फरिअ न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलेहिं बिरंचि सम।।

❖ आपत्ति में शत्रु की भी सच्चे मन से यथाशक्ति सहायता करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है।

मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं।।

गुरु सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महुँ परई।।

दोहा : ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसर बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात।।

सो० गुरु नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभहि नीति कि भावई।।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरु कर द्रोह करहुँ दिन राती।।

मैं सठ हृदय कपट कुटिलाई। गुरु हित कहइ न मोह सोहाई।।

दोहा : एक बार हर मन्दिर जपत रहेउं सिव नाम।
गुरु आयेहु अभिमान ते उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।

हर गुरु निंदक दादुर होई। जनम सहस्त्र पाव तन सोई।।

सीख

सास ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई।।

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कह परइ दुसह दुख भारू।।

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू! कहहुँ सुभाउ नाथ पति आहू।।

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं। सेइअ सकल प्रान की नाईं।।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी।।

तुम्ह कहं तौ न दीन्ह बन वासू। करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू।।

सास ससुर गुरु प्रिय परिवारु। फिरहु त सब करि मिटै खभारु।।

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेषी।।

एक बार मोहि लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई।।

❖ किसी की सरलता से लाभ उठाना उसको धोखा देना है।

हर कहुँ हरि सेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।।

सोचिअ बटु निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई।।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।।

दोहा : ससि गुरु तियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक वेद तें बिमुख भा, अधम न बेन समान।।

जो हठ करउ त निपट कुकरमू। हर गिरि ते गुरु सेवक धरमू।।

गुरु पितु मातु वचन अनुसारी। खलदलु दलन देव हितकारी।।

दोहा : सचिव वैद गुरु तीन जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर होइ बेगि ही नास।।

गुरु कृपा प्राप्त शिष्य का वैभव

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर गुरु संग पुरन्दर जैसे।।

सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठए मुनि वृन्द बुलाई।।

मख रखवारी करि दोउ भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई।।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जन सकल विभव बस करहीं।।

शोषणं भव सिंधोश्च ज्ञापनं सार सम्पदः।
गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्री गुरवे नमः।।
(अर्थात् जिनके पादोदक पान करने से पूर्ण रूपेण संसार-समुद्र सूख जाता है और तत्वज्ञान रूप सारवान सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाती है ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।)
–श्री गुरु गीता, श्लोक १५६ श्री भारत धर्म महामण्डल, वाराणसी, चतुर्थ वृत्ति १९६९

❖ प्रत्येक मनुष्य को नित्यप्रति नियमानुसार श्री भगवान की आराधना अवश्य करते रहना चाहिए।

परम पूज्य चच्चा जी महाराज के प्रिय भजन, पद, दोहे एवं चौपाइयाँ

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलिगुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन, भये मुद मंगलकारी।।
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो।।

– सन्त तुलसीदास, विनय पत्रिका, पद १७४

❖ श्री भगवान के भक्तों में दया और पवित्रता उसी तरह रहती है जैसे फूल में सुगन्ध वास करती है।

संत कबीरदास

गुरु गोविन्द दोऊ एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटे हरि भजै, तब पावै करतार।।
गुरु हैं बड़े गोविन्द ते, मन में देख विचार।
हरि सिरजे ते चार है, गुरु सिरजे ते पार।।
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पाय।
वलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविन्द दिया लखाय।।
कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे ते ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।।
कबीर हरि को रूठते, गुरु की शरणे जाय।
कहें कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय।।
सतगुरु की महिमा अनन्त अनत किया उपकार।
लोचन अनंत उधारिया, अनंत दिखावन हार।।

–अलौकिक भक्तियोग, पृ.१२१

सतगुरु हमें सजीवन मूरि दई।
थल थोरा बरषा भइ भारी, छाय रही सब लाल भई।।
छिन-छिन पाप करन जब लागे, बाढ़न लागी प्रीति नई।
अमरापुर में खेती कीन्हा, हीरा नग ते भेंट भई।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो ! मन की दुविधा दूर गई।
सतगुरु हमें सजीवन मूरि दई।।

❖ संसार की प्रत्येक वस्तु में भय भरा पड़ा है निर्भयता केवल वैराग्य तथा निष्काम कर्म में है।

सदगुरु अगम की राह उधारी।।
यतन-यतन कर तन मन साधो, सुषमनि सुरति सम्हारी।
मिट गई तिमिर दरश भो तिनको, पाइ परम पद भारी।।
हीरा लाल जौहर तहँ दरशै, हरदम नाम निहारी।
निशदिन पल-पल नाम सुलागै, ऐसो अमल करारी।।
महा बारीक मुक्ति का मारग, पश्चिम खुली किभारी।
नौपत नाम ध्वजा फहरावै, चढ़ गइ सुरति अटारी।।
याही चाल मिलो सतगुरु से, मानी सीख हमारी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! चेति लेहु नर नारी।।

दुनियाँ अजब दिवानी, मोरी कही एक न मानी।
तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर, इत-उत फिरत भुलानी।।
तीरथ मूरत पूजत डोले, कंकड़ पत्थर पानी।
विषय वासना के फन्दे परि, मोह जाल उरझानी।।
सुख को दुख दुख को सुख मानै, हित-अनहित नहिं जानी।
औरन को मूरख ठहरावत, आपै बनत सयानी।।
साँच कहीं तो मारन धावै, झूठे को पतियानी।
कहै कबीर कहाँ लगि बरणैं, अदभुत्र खेल बखानी।।

सद्गुरु शरण हंस जब आवे, तबहिं परम पद पावै हो।
सदगुरु भेद हंस जो पावै, अनहद नाद बजावै हो।।
गंगा यमुना मिले सरस्वति, तिरबेनी मध न्यावै हो।
पूरा सदगुरु अलख लखावै, पुनर्जन्म नहिं आवै हो।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! सारहिं शब्द समावै हो।।

साधो ! सोइ सतगुरु मोहि भावै।
राम नाम का भर-भर प्याला, आप पिवै मोहि प्यावै।।
मेला जाय न महन्त कहावै, पूजा भेंट न लावै।
परदा दूर करै आँखिन का, निज दर्शन दिखलावै।।
जाके दरशन साहब दरशे, अनहद शब्द सुनावै।
माया के सुख-दुख करि जानै, संग न स्वपन चलावै।।
निशदिन सत संगति में राचै, शब्द में सुरति समावै।
कहै कबीर ताको भव नाहीं, निर्भय पद परसावै।।

बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना।
इक केहरि-सुत लाभ गड़ेरिया, पाल पोस कर कियो सयाना।।
रहत अचेत फिर अजयन संग, अपना हाल कछू नहिं जाना।
पकड़न भेद तुरत उन दीन्हा, आपन दशा देख मुसकाना।।
मिरगा नाभि बसे कस्तूरी, यह मूरख ढूँढ़त चौगाना।
करत सोच पछतात मनहिं मन, यह सुगन्धी कहाँ से आना।।
अर्ध-अर्ध बिच डोरी लागी, रूप चखा नहिं जात बखाना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! जाको सुर नर मुनि धर ध्याना।।

-कबीर समग्र लेखक - डॉ. युगेश्वर प्रका. प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, हि.प्र. पब्लि. प्रा. लिमिटिड सी-२१ पिशाचमोचन, वाराणसी संस्करण-१९९७पृ.१२६४से१२६७

सन्तो सहज समाधि भली।
गुरुप्रताप जा दिन से जागी, दिन-दिन अधिक चली।।१।। टेक।।
जहँ-जहँ डोलौं सों परिक्रमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।२।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरण, खाँव पियौं सो पूजा।
गृह ऊजड़ एकहि सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।३।।
आँखन मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।४।।
सबद निरन्तर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।।५।।
कह कबीर उनमन रहनी, सो परगट कर गायी।
दुख-सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समायी।।६।।

- परमपूज्य चच्चा जी द्वारा सम्पादित 'सदाचार', सितम्बर सन् १९५० पृ. १५ से उद्धृत

मन्नाथः श्री अगन्नाथो सद्गुरुः श्री जगद्गरुः।
मदात्मा सर्व भूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।
(अर्थात् मेरे नाथ ही जगत के स्वामी श्री नाथ ईश्वर हैं, मेरे गुरु ही जगद्गुरु हैं मेरा आत्मा ही जगत के सब प्राणियों की आत्मा है। ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है।)

-श्री गुरु गीता श्लोक १५८

संत पलटूदास

सतगुरु सिकलीगर मिले तब छूटै पुराना दाग
छूटै पुराना दाग गड़ा मन मुरचा माही।।
सतगुरु पूरे बिना दाग यह छूटै नाहिं।।
झाँवा लेबे जोग तेग को मलै बनाई।।१।
जौहर देय निकार सुरत को रंद चलाई।।
शब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरंड लगावे
जो न जुगत से मलै दाग तब मन का जावै।।
पलटू सैफ को साफ करि बाढ़ धरै बैराग।
सतगुरु सिकलीगर मिलै तब छूटै पुराना दाग।।२।।

रेवता

गुरु पूरा मिलै ज्ञान साधन करै, पकरि कै पाँच पच्चीस मारै।
आतमा देव है पिंड का दौहरा, काम औह क्रोध विनु आग जारै।।१।।
चंद औ सूर तहँ कोटि तारा उगै, प्रान वायु सेती तत्त मारै।।
गगन के बीच में तल बाती बिना, दास पलटू महादीप बारै।।२।।

झूलना

सतगुरु साहिब जब मिहर करी, तब ज्ञान का दीपक बारा है जी।
धर्म अँधेरा छूटि गया, दसहुं दिसि भा उजियारा है जी।।
रैन दिवस टूटे नाहीं, लागी ज्यों तेल की धारा है जी।
पलटू कहै मोहिं दीख परा, घट घट में ठाकुर द्वारा है जी।।

पराई चिता की आरी महै, दिन राति जरै संसार है जी।।
चौरासी चाहिएखान चराचर, कोउ न पावै पार है जी।।
जोगी जती तपी सन्यासी, सबको उन डारा जारि है जी।
पलटू मैं हूँ जरत रहा, सतगुरु लीन्हा निकारि है जी।।

अरिल

तिरगुन रोग प्रचंड जगत सब मीर गया।
औषद पीसै करम कारगर न भया।।

अधिक अधिक गरुवाय दुःख लिये खोयगा।
अरे हारे पलटू सतगुरु मिलै जो वैद वीक तब होयगा।।

शब्द

गगन कि धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मैं वाका चेरा।। टेक।।

सुन्न मेरा नगर बसावई, सतत् में जागै।
जल में अगिन छपावई, संग्रह में त्यागै।। १।।

जंत्र बिना जंत्री बजै, रसनाबिनु गावे।
सोहं सवद अलापि कै, मन को समुझावै। २।।

सुरति डोर अमृत भरैं, जहँ कूप उरधमुख।
उलटै कमल हि गगन में, तब मिलै परमसुख।। ३।।

भजन अखंडित लागई जस तेल की धारा।
पलटूदास दंडौत करि, तेहि बारम्बारा।। ४।।

सकल तजि गुरु ही से ध्यान लगैं हो।
ब्रह्म विस्नु महेशन पुजिही, ना मूरत चित लैहों।। टेक।।

❖ भक्त को अपने इष्टदेव श्री भगवान का बल रहता है।

जो प्यारा मोरे घट माँ बसतु है, वाकी हि माथ नवैही ।१।।

ना कासी में करवत लैहो, ना पचकोस मेंजैही।
प्राग जाय तीरथ नहिं करिहौं, जगर न सीस कटे हीं।।२।।

अजपा और अनाहू साधो, त्रिकुटी ध्यान न लैहीं।
पदम आसन खींच न बैठो, अनहद नाहिं बजैहों।।३।।

सबही जाप छोड़ि के साधो, गुरु का सुमिरन लैहों।
गुरुमूरत हिरदय में छाई, वाही सें ध्यान लगैहौं।।४।।

दुई खुदी हस्ती जब मेटे, निरंकार कहलैहीं।
गगन भूमि में राज हमारो, अनहलक धूम मचैहों।।५।।

पलटूदास प्रेम की बाजी, गुरु ही से दांव लगैहों।
जीती तो मैं गुरु को पावौं, हारी तो उनको कहैहों।।६।।

> गुरुरादिर नादिश्च गुरुः परम दैवतम्।
> गुरोः परतरं नाऽित तस्मै श्री गुरवे नमः
> (गुरु ही सबके आदि हैं, उनमें आदि कोई नहीं है, गुरु ही देवताओं के देवता हैं, गुरु से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।)
>
> - श्री गुरु गीता श्लोक १५९

❖ भाव और प्रेम सहित माता-पिता की सेवा करना साक्षात श्री भगवान के सगुण रूप की पूजा करना है।

यारी साहब (भजन संग्रह)

गीताप्रेस गोरखपुर

गुरु के चरण की रज लैके, दोउ नैनन के विच अंजन दीया।
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लीया।।
कोटि सूरज तहँ छिपे घने, तीन लोकन्धनी धन पाइ पीया।

रसना, राम कहत तैं थाको।
पानी कहे कहूँ प्यास बुझत है, प्यास बुझै जदि चाखो।।
पुरुष-नाम नारी ज्यों जानैं, जानि-बूझि नहिं-भाखो।
दृष्टि से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको।।
गुरुप्रताप साधु की संगति, उलटि दृष्टि जब ताको।
'यारी' कहै सुनो भाई संगे, बज्र वेधि कियो नाको।।

आरति करो मन आरति करो।
गुरुप्रताप साधु की संगति, आवागमन ते छूटि पड़ो।।
अनहद ताल आदि सुध बानी, विनु जिभ्या गुन वेद पढ़ो।
आपा उलटि आत्मा पूजा, त्रिकुटी न्हाइ सुमेर चढ़ो।।
सारंग सेत सुरति सो राखो, मन पंतग होइ अजर जरो।
ज्ञान कै दीप बरै बिनु बाती, कह 'यारी' तहँ ध्यान धरो।।

सतगुरु है सत पुरुष अकेला, पिंड ब्रह्मांड के बाहर मेला।।
दूर वें दूर ऊँच ते ऊँचा, बाट न घाट गली नहिं कूचा।।
आदि न अंत मध्य नहिं तीरा, अगम अपार अति गहिर गंभीरा।।
कच्छ दृष्टि तंह ध्यान लगावै, पल मंहकीट भृंग होइ जावै।।
जैसे चकोर चंद के पासा, दीसै धरती बसै अकासा।।
कह 'यारी' ऐसे मन लावै, तब चातक स्वाती जल पावै।।

सुन्दरदास की बानी

सुन्दर विलास

पूरन ब्रह्म बताय दियो दिन एक अखण्ड है व्यापक सारे।
राग अरु द्वेष करै अब कौन सो जोई है मूल सोई सब डारे,
संशय शोक मिट्यो मन को सब तत्व विचारि कहयो निरधारे,
सुन्दर शुद्ध किये मल धोय कै, है गुरु को उर ध्यान हमारे।।

शत्रुहू न मित्र कोऊ जाके सब है समान, देह को ममत्व छोड़ि आत्मा ही राम है।
औरहू उपाधि जाके कबहूँ न देखियत, सुखक के समुद्र में रहत आठों याम है।।
ऋद्धि अरु सिद्धि जाके हाथ जोरे आगे खड़ी, सुन्दर कहत ताके सब ही गुलाम है।
अधिक प्रशंसा हम कैसे करि कहि सकै, ऐसे गुरुदेव को हमारा जू प्रणाम है।।

गुरु विन ज्ञान नाहिं, गुरु विनु ध्यान नाहिं, गुरु विनु आत्माविचार न लहत्व है।
गुरुविन प्रेम नाहिं गुरु विनु प्रीति नाहिं गुरु विन शील हूँ संतोष न महत्व है।।
गुरुविन वास नाहिं, वुद्धि को प्रकाश नाहिं, भ्रमहू की नाश माहिं संशय रहत्व है।
गुरुविनु वाट नाहि कौड़ी विन हाट नाहिं, सुन्दर प्रदेत नाव को ज्यों खेव सों।।

बूड़त भी सागर में आय कै बँधादै धीर, पारहू लगाय देत नाव कौज्यों खेव सौं।
पर उपकारी सब जीवन के सारे, काज, कबहूं न आवै जाके गुणन को छेव सौं।।
वचन सुनाय कर भ्रम सब दूरि करै, सुन्दर दिखाय देत अलख अभेव सौं।
औरहू सुनेहि हम नीके करि देखे, शोधि जगमें न कोऊ हितकारी गुरुदेव सौं।।

भूमिहूं की रेणु की तो संख्या कोऊ कहत है भारहू अठारह द्रुम तिनकेनु पात हैं।
मेघन की संख्या सोऊ ऋषि न विचारि कहीं, बूंदन की संख्या तेऊ आय के विलात हैं।।
तारन की संख्या सोऊ कही है पुरान माहिं, रोमन की संख्या मुनि जितनेक गात हैं।
सुन्दर जहाँलौं जन्तु सब ही को आवे अंत, गुरु के अनन्त गुण कापै कहे जात हैं।।

गोविन्द के किये जीवजात हैं रसातल को, गुरुपदेश सो तो छूटे यम फंद ते।
गोविन्द के किये जीव वश परे कर्मन के, गुरु के निवाज सूं तो फिरत सुछन्दते।।
गोविन्द के किये जीव बूड़त भवसागर में, सुन्दर कहत गुरु काढ़ै दुःख द्वन्द्वते।
और हू कहां लौ कछु मुख ते कहूं बनाय, गुरु की तो महिमा है अधिक गोविन्द ते।।

सहजो बाई

सहज प्रकाश

हरि किरपा जो होय तो नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहि।।१२।।

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय।
धरती का कागद करूँ गुरु स्तुति न समाय।।१३।।

गुरु की अस्तुति कंह लौ कीजै, बदला कहा गुरु को दीजै।।
गुरु की बदला दिया न जाई, मन में उपजत है सकुचाई।।
इन नैनन जिन राम देखाये, बंधन कोटि काट भुलाये।।
अभय दान दीनन कूं दीन्हें, देखत आप सरीखे कीन्हे।
गुरु की किरपा अपरम्पारै, गुन गावत मम रसना हारै।।
सेस सहस मुख निस दिन गावै, गुरु अस्तुति का अन्त न पावै।
मौन गहूँ अस्तुति कहा करऊँ, बार बार चरनन सिर धरऊँ।।१४।।

चरनदास महिमा अधिकाई। सर्बस बोरे सहजोबाई।।

गुरु मग दृढ़ पग राखिये, डिगमिग डिगमिग छाँड़।
सहजो टेक टरै नहीं, सूर सती ज्यों मॉड़।।१५।।
अरसठ तीरथ गुरु चरन परबी होत अखण्ड।
सहजो ऐसा धाम नहिं, सकल अंड ब्रहंड।।१७।।
सब तीरथ गुरु के चरन, नित ही परबी होय।
सहजो चरगोदक लिये, पार रहत नहिं कोय।।१८।।
गुरुपग निस्वै परसिये, गुरु पग हिरदे राख।
सहजो गुरु पग ध्यान करि, गुरु बिन और न भाख।।२०।।
गुरु अज्ञा दृढ़ करि गहै, गुरु मत सहजो चाल।
रोम रोम गुरु को रटै, सो सिष होय निहाल।।२२।।
गुरु वचन हियरे धरै, ज्यों किरपिन के दाम।
भूमि गड़े माथे दिये सहजो लहै तो राम।।२८।।

❖ पूर्णता केवल श्री भगवान में है। मनुष्य श्री भगवान का अंश है।

सहजो कारज जगत के गुरुबिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु विन क्यों मिलै समझ देख मन माहिं।।३६।।
परमेसर सूँ गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान्।।३७।।
सहजो सतगुरु के मिले भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस है, पाई भूली ठौर।।४२

❖ शिशु-सी निश्छलता में सृष्टा का रूप दृष्टिगोचर होता है।

❖ विनम्रता व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

❖ राम नाम की सिद्धता से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

❖ 'सर्विस' को ईश्वरीय सेवा के रूप में करने से ही सच्चा आनन्द मिलता है।

❖ सदगुरु-वचनों का अक्षरशः पालन करना शिष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

❖ सदगुरु अज्ञान का पर्दा हटाकर सत्य का साक्षात्कार करा देता है।

– सन्त श्री भवानीशंकर

❖ रोने से हृदय का सन्ताप दूर होता है। अपने हृदय की सब प्रकट व गुप्त बातें एकान्त में श्री भगवान को ही सुनानी चाहिए।

दयाबाई की बानी

दयाबोध

चरनदास गुरुदेव जू, ब्रह्म-रूप सुख-धाम।
ताप हरन सब सुख-करन दया करत परनाम।।
चरनदास गुरुदेव है दयारूप भगवान।
इन्द्रादिक जो देवता देत तिन्है सनमान।।
सतगुरु सम कोउ है नहीं या जग में दातार।
देत दान उपदेस सों करैं जीव भव पार।।
गुरु किरपा बिन होत नहिं भक्ति भाव विस्तार।
जोग जज्ञ जप तप 'दया' केवल ब्रह्म विचार।।
मनसा बाचा करि 'दया' गुरु चरनी चित लाव।
जग समुद्र के तरन कूँ, नाहिन आन उपाव।।
जे गुरु कूँ वंदन करैं दया प्रीति के भाय।
आनन्द मगन सदा रहै तिरविधि ताप नसाय।।
चरन कमल गुरुदेव के जे सेवत हित लाय।
'दया' अमरपुर जात है जग सुपनो विसराय।।
नित प्रति वंदन कीजिये गुरु कूँ सीस नवाय।
'दया' सुखी कर देत है हरि सरूप दरसाय।।
सतगुरु ब्रह्म सरूप है मनुष भाव मत जान।
देह भाव मानै 'दया' ते हैं पसू समान।।

गुरु विन ज्ञान ध्यान नहिं हो वै, गुरु विन चौरासी मग जो वै।
गुरु विनु राम भक्ति नहिं जागै, गुरु विनु असुभ कर्म नहिं त्यागै।।
गुरु ही दीन दयाल गोसाईं, गुरु सरनै जो कोई जाई।
पलटै करै काग सूँ हंसा, मन को मेंटत है सब संसा।।
गुरु है सब देवन के देवा, गुरु को कोउ न जानत भेवा।
करुना-सागर कृपा निधाना, गुरु है ब्रह्म रूप भगवाना।।

❖ मन के कहने पर चलने से मनुष्य शक्ति-हीन, दुखी और संसार के लिये अनुपयोगी बनता है।

प्रसंत मीराबाई

गुरुवन्दना

मोहि लागी लगन गुरु-चरनन की।
चरण विना कछुवै नहिं भावै, जग माया सब सपनन की।।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहि तरनन की
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु-सरनन की।।

पायो जी मैं तो रामरतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु किरपा करि अपनायो।।
जनम-जनम की पूँजी पायी, जग में सर्व खोवायो।
खरचै नहिं कोई, चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो।।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरष-हरष जस गायो।।

मीरा मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगी वा घर की, पल पल मैंनां पानी।।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन विहानी।।
काहों पीर कहूँ तन की री, पीर में भरम् रखानी।
खोजत फिरूँ वैद वा घर को, कोई न करत वखानी।।
संत रैदास मिले मोहि सतगुरु, दीनी सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय, पिया अपने से, तब मेरी पीर बुझानी।
'मीरा' खाक खलक सिर डारो, मैं अपना घर जानी।।

री मेरे पार निकस गया, सतगुरु मारया तीर।
विरह भाल लगी उर अंतर, व्याकुल भया शरीर।।
इत उत चित्त चलै न कबहूँ, डारो प्रेम जंजीर।
कै जाणै मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर।।
कहा कहूँ मेरे बस नहिं सजनी, नैन भरत दोउ नीर।
'मीरा' कहै प्रभु तुम मिलियाँ, विन प्राण धरति नहिं धीर।।

❖ आपत्ति के समय में हार्दिक प्रार्थना, गीता-पाठ और तुलसीकृत रामायण से बड़ी सहायता मिलती है।

गुरुभक्त श्री सम्पूर्णानन्द

'गगन गुफा' ग्रन्थ से

यदि मन मुक्ति पदारथ चाहै, तो गुरु चरण सरण रहिं ले।
गुरु के वचन आत्मविद्या निधि, उनसे सार तत्व गहि ले,
लोग करैं जो तेरी निन्दा, मूर्खों की गाली सहि लै,
आतम से तम दूर किया, चाहे तो गुरुशिक्षा को गहि ले,
कहै दास संपूरण नहिं तो, माया ज्वाला में दहि ले।।४।।

योग मुक्ति की बात न पूँछूं, गुरु चरणों करि शीश न जर।
तन मन धन सब उन पर, वारूँ ध्यान करूँ नित आठ पहर।।
जंगल में गुलजार ध्यान से, है अइसा विन ध्यान शहर।
संपूरण पद भक्ति अटल हो, सद्गुरु करिये यही-मेहर।।५।।

गुरु चरनन सीस धरो आली।
भक्ति विना मन थिति नहीं पावत चोरन बीच परो आली।।
गुरु के वचन बांधे दृढ़ मन में माया साथ भिरो आली।
विनु गुरु यम का भय नहिं छूटिहै सिर पर काल खरो आली।।१०।।

गुरु के गुन कर तू गान मनुआ।
विनु गुरु दया काज नहीं सरि है, रह गुरु पद लिपटान मनुआ।
गुरु के मेहर कहर सब मेटै रखु निसि दिन गुरुध्यान मनुआ।।
गुरु ब्रह्म रूप यम फांसि काटि है शास्त्र वेद वतलाय मनुआ।।
छिन में गुरु वहि पद के इहैं जहँ, देवन रहत थकान मनुआ।
गुरु को अहनिसि भज संपूरण, ऐसी बात ले मान मनुआ।।१२।।

गुरु प्यारे से नेह लगा समरत।
लोग कुदुम्ब मतलब के संगी, गुरु विनु कौन सगा सूरत।
तन धन यौवन लोग लुगाई, देइ है अंत दगा सूरत।
विषयन का रस बहुदिन चाखा, अब ता दूर भगा सूरत।।
गुरुपद पद्म की भक्ति अटल करू, प्रेम की चूरन रंगा सूरत।
निज मन को सिख वै संपूरन, गुरुपद प्रेम जगा सूरत।।

❖ जो मनुष्य सदाचारी बनना चाहता हो, उसे अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए।

कोई ईश श्वेत कोई ज्योति ताभ्रोवर कहै।
कोई चिद निर्गुण कोई सगुण वखानता,
कहै संपूर्ण कीधैं ईश है कि है ही नाहिं
मैं तो एक ईश रूप गुरु ही को जानता।।१५।।

या जन से क्या मांगिय, जो है निर्धन आप।
मांगिय तो गुरुदेव से, मेटे सब संताप।।
जल पषान को पूजिया, इनसे माँगे मोष।
सद्गुरु पद परसा नहिं, अधिक बढावै दोष।।
कोटिन ब्रह्मा रुद्र हरि, गुरु वशिष्ट सम कोट।
कोटिन जनक कबीर पै, गुरु आगे सब छोट।।
ब्रह्म हती कीधी नहीं, आँख न देखा ताहि।
पै गुरु को नित देख हूँ, को हरि ढूंढ़न जाहि।।
छिन महँ गुरु दिखलाइ है, ब्रह्म रूप निर्वान।
ताते संपूरन चली, लागी सद्गुरु कान।।
बड़ेभाग गुरु पाइयाँ गुरु सम और न कोय।
गुरुपद पंकज देखते पाप वेगाना होय।।
समझु मूढ़ मन बावरे, अजहूँ सीख संतोष।
एक दिना नहिं एक दिन गुरु तोहि देइ छहि मोष।।
गुरुहि सुमिर संपूर्ण तू, एहि सम और न काम।
काल सीस छन मारि है अन्त देहि निज धाम।।१६।।

गुरु सम कोउ दयाल जग माहीं।
गुरुपद सुमिरि तरे जग के तिन पापिहु मुक्ती पाहीं।।
यम जालिम की फाँसी काटहि, अब गुरु दया कराही।
पाँच पचीस जेर करि तीनों माया फंद कटाहीं।।
धुर धर की गुरु खबर सुनावे सत्य ज्ञान बतलाहीं।
कह संपूर्ण दास गुरु केरो, कीटहिं भृंग बनाहीं।।२२।।

❖ किसी प्राणी को मारकर खाने की इच्छा ही मनुष्य में हिंसा वृत्ति और पाशविक भाव उत्पन्न करती है।

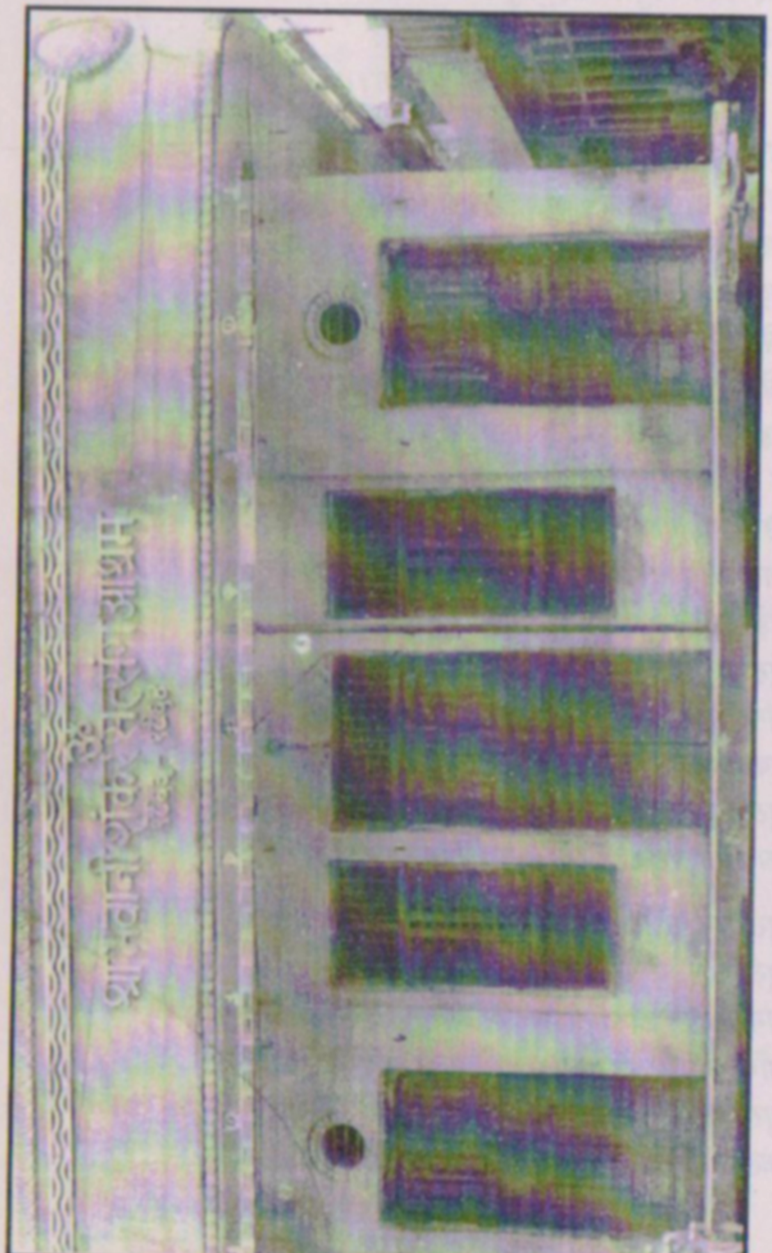

चन्द्र नगर, उरई स्थित परम पूज्य चच्चा जी का निवास स्थान

राम-बाल्मीकि : प्रसंग

सोरठा : राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति-नेति नित निगम कह।।

जगु पेखन तुम्ह देखन हारे। विधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानअि मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन।।
चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तन धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।

दोहा : पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहि दिखावौं ठाउँ।।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने।।
बाल्मीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी।।
सुनहु राम अब कहहुँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहिं निरतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।

दोहा : जसु तुम्हार मानस बिमल, हंसनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियं तासु।।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।।
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि, बिनय बिसेषी।।
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा।।

❖ संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर विद्यमान है। उसे देखो और अनुभव करो।

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन मोहीं।।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिबारा।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। विप्र जेवाँइ देहि बहु दाना।।
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियं जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

दोहा : सबु करि मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ।।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिनके कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी।।
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी।।
तुम्हहि छाड़ि गति दूसर नाहीं। राम बसहु तिन के मन मांहीं।।
जननी सम जानहिं पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी।।
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।।
जिनहिं राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।।

दोहा : स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम तात।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात।।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं, विप्र धेनु हित संकट सहहीं।।
नीति निपुन जिन्हकें जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका।।
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहिं सब भाँति तुम्हार भरोसा।।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।।
जाति पांति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई।।
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा।।

दोहा : जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह।।

– श्री रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्या काण्ड दोहा १२६ से १३१

गुरु भक्त काशीप्रसाद जी के पद

मन तू रामनाम रस पी ले।
गुरु चरनन में ध्यान लगा के, शब्द सुरति गह लीजे।।
सोच विचार त्याग दे उर से, सकल वासना तज दे।
परम प्रकाश रूप लख-लख के, प्रेमाश्रु जल भर ले।। मन. . .
तन धन का मद मोह त्याग दे,कर्तापन का गर्व मिटा दे।
शरनागत का भाव जगाकर, आत्मसाक्ष्य कर ली जे।। मन. . .
मानव तन दुर्लभ है जग में, व्यर्थ नष्ट मत कीजे।
सतगुरु की पतवार थामकर, भव-सागर तर लीजे।। मन. . .

मन ! तू करले गुरु से प्यार।
जिनकी कृपा-दृष्टि से ही बस खुल जाते सब द्वार।। मन तू . .
होती है परतीति सनातन, उमगें प्रीति अपार।
बहे अश्रु-धारा गंगा-सी, मन-इन्द्रिय के पार।। मन तू . . .
तेरे प्रीतम द्वार खड़े हैं, दर्शन है साकार।
हम तुम दोनों एक रूप हैं, कहे पुकार-पुकार।। मन तू . . .
मिलकर दीप जलाले उर का, चेतन रूप प्रकाश।
सदगुरु शाश्वत ब्रह्म रूप हैं, यही बात है सार। मन तू . . .
जड़-चेतन सब जीव जगत में, अगणित अपरम्पार।
सब में चेतन एक वही है, नहीं और आकार।। मन तू . . .
वही ब्रह्म में, वही पिण्ड में, फिर क्या सोच-विचार।
'पागल' की बस एक लगन है, पड़ा रहूँ गुरुद्वार।। मन तू . . .

तेरे कदमों में आ करके बता दो फिर कहाँ जाऊँ ?
दिया था प्यार जो तुमने बता दो वह कहाँ पाऊँ ?
भटकता था मैं राहों में मिले थे एक तुम रहवर।
दिखाई रोशनी तुमने वह सूरज मैं कहाँ पाऊँ ?
न देखा कौन कैसा है, लगाया था गले तुमने।
भला ऐसा दयालु फिर कहाँ ढूँढू कहाँ पाऊँ ?
टपकता प्रेम वाणी से झलकता नेह नयनों से,
भरा दिल प्यार से ऐसा पिता तुम-सा कहाँ पाऊँ ?
कहूँ क्या उनकी बाहों को लुटाते जिसने जो चाहा।
भला दानी जहाँ में तुम सरीखा मैं कहाँ पाऊँ ?
थे करते दान भक्ति का, सदा ले पाप औरों के।
पकड़ के हाथ अधर्मों का, पतित पावन कहाँ पाऊँ ?
थे तुम भण्डार शक्ति के, बने थे प्रेम की मूरत।
जो आता मस्त बन जाता, वो साकी मैं कहाँ पाऊँ ?
निकलती ज्योति कदमों से, जला देती गुनाहों को।
दिखाती रूप मन मोहन वो सूरत मैं कहाँ पाऊँ ?
कहाँ तक गायेगा 'पागल' तू महिमा उन गुरुवर की।
बने थे प्रेम की मूरत, वो प्रेमी मैं कहाँ पाऊँ ?

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे।
वाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।।
जब तक वदन में जान रगों में लहू रहे।
तेरी ही याद और तेरी जुस्त जू रहे।।
दिल में रहे हो फिर भी परदा किये रहे।
मेरी खुदी मिटा दे, फिर तू ही तू रहे।।

यही है तमन्ना कि पागल रहूँ मैं, तेरे प्यार को बस सँजोता रहूँ मैं।
घटे न कभी बस तेरे प्यार का रस, पिलाता रहे तूं औ पीता रहूँ मैं।। यही..
मिष्ठान्न, भोजन तेरे नाम में है, खिलाता रहे तू औ खाता रहूँ मै।।
तेरे नाम की बस रटन ऐसी होवे, पपीहा सरीखी लगन में रहूँ मैं।। यही...
बना दो मुझे प्यार से ऐसा 'पागल' जहाँ में तुझे देखता ही रहूँ मैं।
न मैं ही रहूँ बस यही ख्याल हरदम, जगाता रहे जागता ही रहूँ मैं।। यही...

नहीं जानता हूँ कि बस प्रेम क्या है तरीका ये मिलने का बतला रहा है।
न होगी खुशी उतनी मिल करके, तुझसे, मज़ा तेरी चाहत में जो आ रहा है।।
ये मिलने की तड़पन मैं कैसे बताऊँ, बहे अश्रु धारा मैं कैसे बताऊँ।
अलग करके मछली को पानी से देखो, मिलन का नज़ारा नज़र आ रहा है।।
लगाकर टकी ऐसी खुद भी तो देखो, तो खुद में खुदा ही नज़र आ रहा है।।
पपीहा से पूँछो कि क्या कह रहा है, रटन में लगा है सदा अपने पिउ के।
रटन नाम की तुम भी करके तो देखो, तो अन्दर तुम्हारे दरश आ रहा है।।

गुरु भक्त रामस्वरूप के दोहे

सदगुरु - स्तवन

सदगुरु ही तो राम हैं, सदगुरु कृष्ण महान।
सदगुरु त्रिभुवन पति स्वयं, सदगुरु ही भगवान।।
सदगुरु ब्रह्मा विष्णु हैं, सदगुरु स्वयं महेश।
कृपा-कोर कर काटते, सबके कठिन कलेश।।
सदगुरु सर्व समर्थ हैं, सदगुरु दीनानाथ।
सदगुरु जीवन में मिले, सदा झुकाऊँ माथ।।
सदगुरु सोलह सूर्य सम, सदगुरु तेज प्रताप।
सदगुरु काटें जगत के, भव-बन्धंन तम पाप।।
सदगुरु रूप अनेक धर, देते शुभ वरदान।
सदगुरु समदर्शी सदा, वचन-सुधा दें दान।।
सदगुरु इस भव-सिन्धु से, सहज लगाते पार।
बूड़े उन्हें उबारते, ले कर में पतवार।।
सदगुरु एहि कलिकाल में, कल्प वृक्ष सिरमौर।
मन-वाँछा पूरी करें, उन बिन और न ठौर।।
सदगुरु चरण पुनीत हैं, सदगुरु सुर-सरि-धार।
जीवित-मृत सब तारते, क्षण में कर उद्धार।।
सदगुरु उर-तम दूरि करि, देते ज्ञान-प्रकाश।
क्षण में करते सहज ही, षट रिपुओं का नाश।।
सदगुरु सत के रूप हैं, सदगुरु परमानन्द।
सदगुरु चेतन सनातन, सदगुरु ओमानन्द।।
सदगुरु जननी-जनक हैं, सदगुरु मित्र उदार।
जो आवत गुरु-शरण में, उनका बेड़ा पार।।
सारी आश-भरोस तजि, पकड़ो गुरु की बाँह।
तीन लोक चौदह भुवन, ऐसी कोऊ नाँह।।

- डॉ. रामस्वरूप खरे रचित : 'सदगुरु स्वरूप सतसई', से उद्धृत

❖ मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है अतएव उसके स्वागत को सदैव तैयार रहो।

आरती

आरती सदगुरु चरनन की, करहु मन-नख-दुति किरनन की।
नयन कमलन की अनुहारी,
है चितवन पाप-ताप हारी,
लाल है पान, अजब मुस्कान
श्रवन को अमृत वचनन की। करहु मन-नख-दुति किरनन की।
हृदय है दया क्षमा भण्डार
करन सों करत अधम उद्धार
दरस की आस, हरत भव त्रास
नाव दृढ़ भव निधि उतरन की। करहुं मन-नख-दुति किरनन की
नाभि ले जमुन भँवर छवि छीन
देख कटि केहरि छवि भई हीन
लेत हैं पीर, बँधावत धीर
काम गज मन-वन विरहन की। करहु मन-नख-दुति-किरनन की।
चरण-नख अमृत रस कर पान
होत भव रोग नाश दुख खान
खुलेंगे नैन, मिले सुख चैन
निरन्तर गुरुजी के दरसन की। करहु मन-नख-दुति किरनन की।
चरण नख ज्योति लख लीजे
दयालु मो पै दया कीजे
चंद्र नख किरन, हृदय की फिरन
दया की भीख भिखारिन की। करहु मन-नख-दुति किरनन की।

❖ प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए।

कोंच रोड स्थित समाधि का भीतरी भाग

चित्र के निचले भाग में परम पूज्य चच्चा जी के चरण चिन्ह

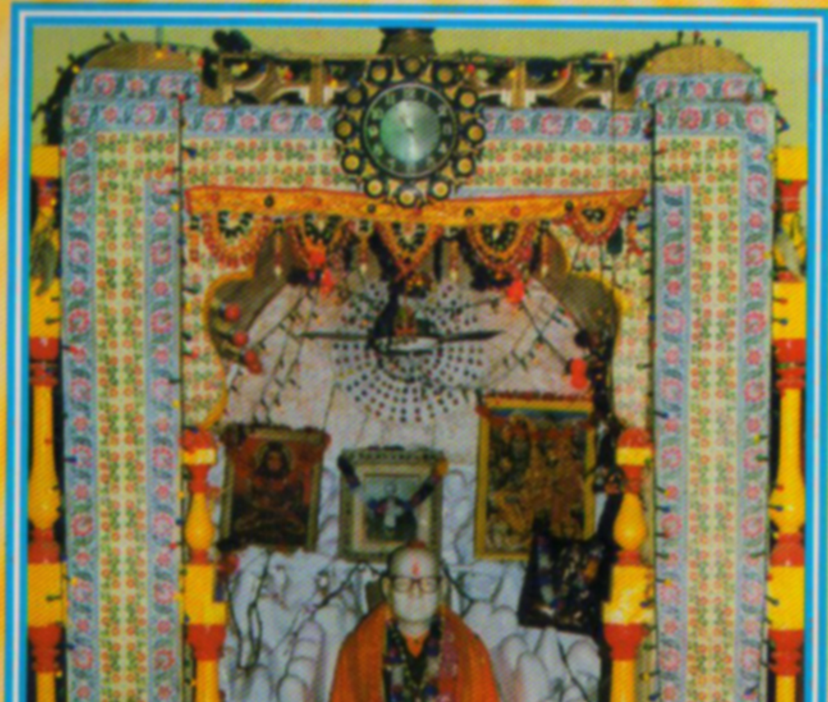

आर. एस. प्रिंटिंग प्रेस, उरई

मन्दिर के भीतरी भाग में प्रतिष्ठिापित
सद्गुरु भगवान चच्चा जी की मूर्ति

सदाचार आश्रम, लखनऊ